



भक्ति कालीन काव्य में कबीर की दृष्टि

अजय कुमार

शोधार्थी, हिंदी विभाग, नेट, जे.आर.एफ. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

यह आलेख 'भक्तिकालीन काव्य में कबीर की दृष्टि' को रेखांकित करता है। कबीरदास जी भक्ति काल के ज्ञानमार्गी प्रधान संत कवि हैं। इन्होंने अपनी भाषा और काव्य के माध्यम से समाज में उपदेश दिए। कबीरदास जी ने मनुष्य के धर्म पर बल देते हुए समाज को अज्ञान, अहंकार, पाखण्ड तथा अंधविश्वास से बाहर निकाला तथा मूर्ति पूजा का विरोध किया और इसके साथ ही धार्मिक समानता पर भी बल दिया। अतः कबीर का भक्तिकाल में विशेष योगदान है।

मूल शब्द: भक्तिकाल, भाषा, निर्गुण धारा, समरसता, ब्रह्म, अंधविश्वास

प्रस्तावना

कबीरदास जी हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के प्रमुख संत कवि हैं। और वह ज्ञानाश्रयी काव्य धारा के अर्न्तगत निर्गुण शाखा के प्रमुख कवि हैं। कबीरदास जी की वाणी में अद्भुत सच्चाई है तथा इनकी काव्य दृष्टि बड़ी प्रखर थी तथा कबीरदास जी ने अपनी कविता के माध्यम से जनता को सन्देश दिया। तथा कबीरदास जी ने जिस समाज को देखा था उस समय समाज अज्ञान, अहंकार, पाखण्ड, तथा अंधविश्वास में समाज डूबा हुआ था तथा कबीरदास जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में ऐसा सन्देश दिया कि जो समाज अंधविश्वास में डूबा हुआ था वह समाज अंधविश्वास से उभरने लगा। कबीरदास जी की काव्यदृष्टि की प्रशंसा करते हुए बलदेश वंशी ने अपनी पुस्तक भारतीय सन्त परम्परा में कहा है— "कबीर अद्भुत हैं। अनूठे हैं, उनमें भक्ति, ज्ञान और कर्म की त्रिवेणी समाई हुई है। विश्व के अधुना से अधुना विचार कबीर की वैचारिक उजास के आगे फीके और दोहराए गए लगते हैं। कबीर ऐसे क्रांतिकारी हैं जिनके सामने आज तक की सभी कृतियाँ अधूरी हैं, अपूर्ण हैं। कबीर के विचारों में आधुनिकता ही नहीं उत्तर आधुनिकताएँ समाहित हैं। सांभ्यवाद, जनवाद, धाम-नधाम के विचार हो या अस्तित्ववाद के मूल्यमान, कबीर ने लगता है। अपने समय में खड़े होकर भविष्य की सदियों तक की वैचारिक संभावनाओं का साक्षात्कार कर लिया है।" कबीरदास जी ने अपनी कविताओं के माध्यम से यह संदेश देने का प्रयास किया है, कि ज्ञान एवं प्रेम के माध्यम से ही मनुष्य का उच्चतम विकास हो सकता है। कबीरदास जी कहते हैं कि—

"पोथी पढि-पढि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढे सो पंडित होय।।"

ज्ञान देने वाले गुरु के बारे में उनका कहना है कि

"बलिहारी गुरु आपकी, हारी धरी सौ बार।
मनुष तैं देवता किया, करत न लागी बार।।"

कबीरदास जी ने अपनी कविताओं में एक अद्भुत भाषा का प्रयोग किया वह जिस समाज में जाते थे जैसी समाज में जाते थे उसी तरह की भाषा का प्रयोग करते थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तो उनकी भाषा की प्रशंसा करते हुए उन्हें वाणी का डिक्टेटर तक

कहा है। उनकी भाषा शैली बहुत प्रभावशाली थी उन्होंने हिन्दी भाषा को भाषागत रूढ़ियों से मुक्ति प्रदान की और शब्दों का अपने ढंग से प्रयोग किया तथा उन्हें नए अर्थ प्रदान किए। कबीर की भाषा को सद्युक्कड़ी कहकर उसमें हीनता का आरोप करने वाले आलोचकों ने इस महाकवि के साथ घोर अन्याय किया है आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे सद्युक्कड़ी केवल इसलिए कहा क्योंकि इस में राजस्थानी, पंजाबी, खड़ी, सभी एक ही रूप है। कबीर ने किसी रूढिगत भाषा का अपने काव्य में प्रयोग न करके अपनी स्वतंत्र भाषा का प्रयोग किया है। यह लोक भाषा थी; बनावटी नहीं।¹² (यज्ञदत्त शर्मा) कबीरदास जी ने भेद-भाव की समस्त सीमाओं को तोड़कर भक्त के रूप में जिस आदर्श मानव को सामने रखा है, वह मानव व्यक्तित्व के विकास की सम्पूर्ण सम्भावना को समाप्त करके उसे ईश्वर के स्तर तक पहुँचा देने वाला है। नर का नारायणत्व प्राप्त कर लेना ही सच्चा मानव धर्म है। कबीर ने कहा है कि हे 'प्रभु निरन्तर तुम्हारा ध्यान करते हुए मैं तुममें लीन हो गया'। अब मेरा अहंकार समाप्त हो गया। मैं तुम्हारे नाम पर निछावर हो जाता हूँ अब मैं जहां देखता हूँ वहां आप ही दिखाई पड़ते हैं।

"तू तू करता तू भय, मुझमे रहीं न हूँ।
वरी तेरे नाउं परि, जित देखो तित हूँ।।"

कबीरदास जी मनुष्य को इसी ऊँचाई पर देखना चाहते हैं। मानव आत्मा जब विश्वात्मा से अपना तादात्म्य कर लेती है तब मनुष्य सच्चे अर्थों में मानव धर्मा हो जाता है। विज्ञान अपने ज्ञान का विस्तार ग्रह मंगल या उससे भी परे स्थित लोको तक कर सकता है। दर्शन किसी ऐसे सार्वभौम सिद्धान्त कर अन्वेषण कर सकता है, जो सभी पदार्थों के मूल में स्थित हो, किन्तु धर्म अनिवार्यतः मानव को ही केन्द्र में रखकर चलता है वही मनुष्य को उदात्त बनाता है। यह धर्म प्रेरित मानवता हमारी तार्किक चेतना को प्रदीप्त करती है, हमारे विवेक को प्रेरित करती है, हमारी प्रेम भावना को स्फूर्ति देती है, और हमारे जीवन का बौद्धिक मर्यादा प्रदान करती है। कबीरदास जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से मनुष्य को नैतिक आचरण की मर्यादा में बांधने के साथ-साथ उनके मन को परिष्कार कर तथा उनके जीवन को नैतिक आचरण की मर्यादा में बांधकर सच्चे मानव धर्म की ऊँचाई तक पहुंचाता है। कबीरदास जी ने मानवता के विकास के लिए मनुष्यों को यह सन्देश दिया है कि हमारी पारिवारिक या सामाजिक

परिस्थितियाँ कैसी भी हो हमें अपना नैतिक सामाजिक आदि सभी प्रकार का विकास करके समाज के लिए प्रयोजनीय बनना चाहिए। उनका यह कथन निम्न प्रतीकात्मक पद में दृष्टव्य है।

“धोदे धोदे री धोलनियाँ मेरी रंग भरी चुनरिया
जब आये हम जगत में जग हसे हम रोय
ऐसी करनी कर चले, हम हसे जग रोय।।”

राजनीति, विज्ञान, कला धर्म या किसी भी दूसरे विषय की ओर ध्यान देने से पहले मनुष्य के अन्न, वस्त्र, मकान आदि चाहिए। जिसकी उपयोगिता आरम्भिक मानव से आज तक एक जैसी है। इनका उत्पादन मनुष्य के लिए हमेशा से जरूरी रहा है उत्पादन की इस शक्तियों का मनुष्य के सामाजिक परिवर्तन तथा व्यक्तिगत विकास में हमेशा सबसे बड़ा हाथ रहा है। उत्पादन शक्तियों पर कुछ लोग अधिकार प्राप्त कर धनिक हो गये और शेष जनता श्रमिक के रूप में श्रम करके निर्धन बनी रहीं। निर्धनों के धन को लूट कर संग्रह करने वाले पूंजीपतियों से सद्गुरु कबीर साहब ने कहा है

“कबीर पूंजी शाह की, तू जनि करे खुबार।
खरी विगुरन होयंगी, लिखा देती बार।।”

कबीर में काव्य-प्रतिभा की कमी न थी किन्तु उन्हें कवि बनन की परवाह बिलकुल नहीं थी। उन्होंने स्पष्ट उद्घोषणा की –

“तुम्ह जिनि जानौ गीत है, यहु निज ब्रह्म विचार।
केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे।।”

सायास काव्य कौशल न प्रदर्शित करने पर भी कबीर की अभिव्यक्ति में पर्याप्त साहित्यिकता आ गयी है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में यद्यपि कबीर ने कहीं भी काव्य लिखने की प्रतिज्ञा नहीं की तथापि उनकी आध्यात्मिक रस की गगरी से घुलके हुए र से काव्य की कटोरी में भी कम रस इकट्ठा नहीं हुआ कबीर के काव्य के कुछ स्थल ऐसे हैं। जहाँ अस्पष्टता तथा दुरुहता है, वाणी अटपटी है, कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ उपदेशों की रुक्षता है, किन्तु बहुत से ऐसे स्थल हैं, जहाँ सहज रसोद्रेक एवं मधुर भावों की व्यंजना है। काव्यात्मक स्थलों में माधुर्य गुण का प्राधान्य है। जैसे –

“पथु निहारे कामिनी लोचन भर ले उसासा।
उर न भीजै पथु ना हरि दर्शन की आसा।।”

सुधारवादी उक्तियाँ प्रसादगुणयुक्त हैं। उपमा, दृष्टान्त आदि अलंकार के प्रयोग से प्रसादात्मकता की और भी वृद्धि हुई है। अपनी अभिव्यक्ति को बोधगम्य बनाने के लिए उन्होंने उपमा, रूपक के साथ विविध प्रतीकों का प्रयोग किया। कबीर लौकिक कबीर नहीं बल्कि आध्यात्मिक भावों के उद्गाता कवी हैं रस-योजना की दृष्टि से कबीर के काव्य में शृंगार, वात्सल्य तथा शान्ति की अभिव्यक्ति है।

कबीर की वाणी में श्रद्धा, दया, त्याग, विनय, आक्रोश, अनुराग आदि अन्य भावों की भी प्रतिष्ठा हुई है। कबीर का सारा जीवन सत्य और आनन्द की खोज में बीता, इस आनन्दानुभूति तथा सत्यानुभव की अभिव्यक्ति से ही उनके सम्पूर्ण काव्य का निर्माण हुआ है।⁵

कबीर ने अपने समय में प्रचलित मूर्तिपूजा का विरोध किया। मन्दिर में स्थापित मूर्तियों को देवता मानकर मनुष्य उसकी उपासना करते थे। उनका विश्वास था कि मूर्ति उपासना से उनके दुःख दर्द दूर हो जायेंगे। जहाँ समाज के उच्च वर्ग के

लोग मूर्ति पूजा करते थे। वहीं समाज के निम्न वर्ग के लोग इससे वंचित रह जाते थे। इसका एक मात्र कारण छुआछूत था। समाज के निम्न वर्ग के लोगों को अछूत समझा जाता था। उनका मन्दिर में प्रवेश वर्जित था। कबीर का कहना है कि जब सभी मनुष्य उस परमेश्वर की संतान हैं जिसको हर मनुष्य प्राप्त करना चाहता है तो यह कैसा भेद। सभी को उस परमेश्वर की उपासना का अधिकार होना चाहिए। जब वह सभी मनुष्यों का कर्त्ता है तो वह किसी के लिए बँट नहीं सकता। वह केवल मूर्तियों में निवास नहीं कर सकता। वह संसार के कण-कण में बसा करता है केवल एक पत्थर की मूर्ति को देवता मान लेना असंगत है—

“जो पाथर को कहिते देय। ताकी विरथा होवैं सेव।।
जो पाथर की पाई पाई। तिस की धाल अजाई जाई।।”⁴

कबीरदास जी ने मानवता के प्रबल विरोधी पक्ष, आर्थिक भेदभाव पर भी ध्यान केन्द्रित किया है; उन्होंने कहा है जो निर्धन हैं, उनका आदर कोई नहीं करता, जब निर्धन धनी के यहां जाता है तो वह मुंह फेर लेता है, किन्तु जब धनी निर्धन के यहां आता है तो वह उसका आदर करता है। वस्तुतः धनी एवं निर्धन दोनों भाई-भाई हैं, यह तो प्रभु की कला है कि दोनों दो स्थितियों में पड़ गए हैं वास्तविक निर्धन तो यह है जिसके हृदय में भगवान का नाम नहीं है।

“निर्धन आदर कोई न टेई। लाख जतन करै ओहू चित न धरेई।
जो निरधन सरधन के जाई। आगे बैठा पीठ फिराई।
जौ सरधन दोनों भाई। दीया आदर लिया बुलाई।
निर्धन सरधन दोनों बाई। प्रभु की कला न मेटी जाई।
कहि कबीर निर्धन है सोई। जाके हिरदैं नाम न होई।।”

यद्यपि उक्त पद में कबीरदास जी ने गरीब-अमीर में सामंजस्य बैठाते हुए गरीब-अमीर दोनों को भाई-भाई कहा है, परन्तु कबीर का जितना आक्रोश सामाजिक और धार्मिक असमानता के प्रति है। उसका शतांश भी आर्थिक विषमता के प्रति नहीं है।⁵ कबीर के समय देश में धर्म की एक और धारा प्रवाहित हो रही थी; वह थी सूफी साधना की धारा। सूफी लोग इस्लाम के एकेश्वरवाद से सन्तुष्ट न थे और भगवान को विशिष्टाद्वैतवादी वेदान्तियों की तरह मानते थे। ये लोग मुसलमान उलेमाओं की तरह कट्टर और संकीर्ण मतवादी न थे और नही इन्हें मुस्लिम धर्म के कर्मकांड पक्ष (शरीयत) पर विश्वास था। इस प्रकार कबीर के समय में और उससे पहले धार्मिक आंदोलनों के रूप में जनता का विद्रोह तीन धाराओं में फूटा और जनवादी कबीर ने इन तीनों को सम्यक रूप में आत्मसात् करके सर्वसाधारण जनता के लिए एक सामान्य मार्ग का निर्देश किया –

“पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढे सो पंडित होय।।”⁶

डॉ० हजारी प्रसाद के शब्दों में “कबीर ऐसे ही मिलन-बिन्दु पर खड़े थे, जहां से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ से एक ओर ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर अशिक्षा; जहाँ एक ओर भक्ति मार्ग निकल जाता है। और दूसरी ओर सगुण साधना उसी प्रशस्त चौराहें पर वे खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गये हुए मार्गों के दोष, गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। कबीर का भगवच्छत सौभाग्य था। उन्होंने इसका खूब उपयोग भी किया। कबीर ने जातिगत, वंशगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत और शास्त्रगत रुढ़ियों और परम्परा के मायाजाल को बुरी तरह छिन्न

भिन्न किया है। एक ओर वे पंडितों को खरी खोटी सुनाते हैं और दूसरी ओर भुल्लाओं की कटु आलोचना करते हैं। एक ओर मन्दिर तथा तीर्थाटन आदि की निस्सारता बताते हैं तो दूसरी ओर मस्जिद और हज-नमाज की निरर्थकता सिद्ध करते हैं। वे पुकार उठते हैं—

“अरे इन दोउन सह न पाई,
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुरकाई।”⁷

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार “इसकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी, पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर ‘रमैनी’ और ‘सुबद’ में गाने के पद हैं, जिनमें काव्य की ब्रजभाषा और कहीं कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है।”⁸ भक्तिकालीन काव्य में कबीर ने अपनी दृष्टि से जो देखा उस समय समाज अंधविश्वास में डुबा हुआ या कबीरदास जी ने ठीक उसी मौके पर आकर समाज में अपनी भाषा और अपनी कविता के माध्यम से समाज को सचेत कराया कि भगवान हर जगह व्याप्त है। और कबीरदास जी ने अपने प्रवचनों द्वारा समाज में मूर्ति पूजा का विरोध किया। और जनता में यह सन्देश दिया कि मूर्ति पूजने से कुछ नहीं होगा केवल अपने कर्म अच्छे करो। कबीर की दृष्टि मनुष्य के सभी रूपों को देखने वाली थी।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ० बलदेव वंशी, भारतीय संत परम्परा, पृ० 80
2. यज्ञ दत्त शर्मा: हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल पुनः मूल्यांकन, पृ० 100
3. रामकिशोर शर्मा: हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास, पृ० 109
4. स० डॉ० सत्यपाल शर्मा: भक्ति काव्य की संवेदना, पृ० 21
5. राम चन्द्र तिवारी: कबीर मीमांसा, पृ० 121
6. डॉ० शिवकुमार शर्मा: हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० 168
7. डॉ० शिव कुमार शर्मा: हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ० 169
8. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 76